इकाई 24 महिलाएँ

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 19वीं और 20वीं सदी-पूर्वार्ध में महिलाओं हेतु सुधार

- 24.2.1 "सती" के विरुद्ध
- 24.2.2 विधवा-पुनर्विवाह
- 24.2.3 वैश्याओं का पुनर्वास
- 24.2.4 आर्य समाज
- 24.2.5 बाल-विवाह निषेध

24.3 महिलाओं हेतु शिक्षा और पहचान के साथ उभरती महिलाएँ

- 24.3.1 साहित्य में महिलाएँ और महिलाओं द्वारा साहित्य
- 24.3.2 अधिकारों हेतु महिलाएँ
- 24.3.3 महिलाओं हेतु महिलाएँ
- 24.3.4 राष्ट्रवादी संघर्ष में महिलाएँ
- 24.3.5 समानता हेतु महिलाएँ

24.4 महिलाओं की स्वतंत्र राजनीतिक पहचान

- 24.4.1 राजनीति में महिलाओं के प्रति भेदभाव
- 24.4.2 राजनीति में महिलाओं की पहल
- 24.4.3 महिला "आतंकवादी"

24.5 महिला एकता अथवा संयुक्त संचलन के सामने मुख्य मुद्दे

- 24.5.1 सम्प्रदाय और जातिवाद
- 24.5.2 दमन से दैनिक मुठभेड़
  - i) मद्य के विरुद्ध
  - ii) दहेज के विरुद्ध
  - iii) यौन दुष्प्रयोग के विरुद्ध
- 24.5.3 पर्यावरण और जीवंतता

24.6 राजनीति में महिलाएँ या महिलाओं 'द्वारा' राजनीति

- 24.6.1 तेलंगाना आंदोलन
- 24.6.2 बोध गया आंदोलन
- 24.6.3 दलित महिला आंदोलन
- 24.6.4 आदिवासी महिला आंदोलन
- 24.6.5 साहित्य, रंगमंच व अन्य अभिव्यक्ति-विधाओं के माध्यम से संचलन

24.7 शब्दावली

24.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें व लेख

24.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई में दिया गया है – भारत में विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका और योगदान। इस इकाई को पढ़ लेने के बाद, आप जान सकेंगे :

- भारत में महिला आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि;
- महिला एकता के सामने मुख्य मुद्दे; और
- राजनीति में महिलाओं की भूमिका।

24.1 प्रस्तावना

भारत के सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका को समझना आसान होगा यदि हम इस अध्ययन को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँट दें।

प्रथमत:, हम 19वीं और 20वीं शताब्दियों, यानी पूर्व- तथा पश्च-औपनिवेशिक युग में महिलाओं की भूमिका का एक विशालदर्शी अवलोकन करने का प्रयास करेंगे।

तत्पश्चात्, हम इन आंदोलनों की जाँच दो विस्तृत दृष्टिकोणों से करेंगे, नामत: (i) महिलाओं 'हेतु'' और (ii) महिलाओं "dm''।

i) सुधारों और राष्ट्रवादी संघर्ष के काल को महिलाओं 'हेतु'' के रूप में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है क्योंकि उन्नति के लिए सभी हितों और अवसरों के लिए संघर्ष और प्राप्ति उन समाज-सुधारकों द्वारा ही की गई जो, अपरिहार्य रूप से, पुरुष थे। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में महिलाओं की व्यग्र और वास्तविक भागीदारी थी, लेकिन नेतृत्व पुरुष हाथों में ही था। अभी तक, यह काल महिलाओं हेतु "स्वतंत्रता के आरंभ'' के रूप में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

ii) स्वतंत्रोत्तर काल में महिलाओं ने अपनी निजी स्वतंत्रता पर ध्यान केन्द्रित किया। इस आंदोलन की नींव अंग्रेजी राज-विरोधी दिनों में ही डाली जा चुकी थी जब महिलाओं ने अपनी पहचान को साहित्य के माध्यम से और अपनी गतिविधियों को "आतंकवादियों'' के रूप में खोजना प्रारंभ कर दिया था। वे धीरे-धीरे संसार के महिला आंदोलन का हिस्सा बन गईं और उनके अपने ही देश में सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों में उनकी भूमिका उत्तरोत्तर उदग्र होनी प्रारंभ हो गई।

24.2 19वीं और 20वीं सदी-पूर्वार्ध में महिलाओं हेतु सुधार

उन्नीसवीं सदी को महिला युग पुकारना ठीक ही होगा। उनके अधिकार और उनके प्रति किए जाने वाले अन्याय, साथ ही उनकी क्षमताएँ और अन्त:शक्तियाँ, यूरोप में और उपनिवेशों में भी गर्मागर्म बहस के मुद्दे हुआ करते थे। इस शताब्दी के अंत तक, नारी अधिकारीवादी विचार इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, और रूप में थी, "उग्र उन्मूलनवादियों'' के दिमाग में थे। भारत में, महिलाओं के प्रति अन्याय पर समाज-सुधारकों द्वारा खेद प्रकट किया जाने लगा। महिलाओं हेतु', पुरुषों 'द्वारा' को इस प्रकार का आंदोलन बंगाल और महाराष्ट्र में उद्भूत हुआ।

24.2.1 "सती" के विरुद्ध

भारतीय बुर्जुआ वर्ग, जो पाश्चात्यकरण के फलस्वरूप जन्मा था, जाति बहुदेववाद, मूर्ति-पूजा, जीववाद, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि के विरुद्ध अभियान छेड़कर समाज-सुधार करने के प्रयास में था। ये, उनके अनुसार, 'पूर्व-आधुनिक' या आदि समाज के तत्त्व थे। विदेशी धर्म-प्रचारकों ने इन्हें "हिन्दू बर्बरता" के उदाहरणों का छद्म नाम देकर कर औपनिवेशिक ताकतों के शासन हेतु एक खासा आधार प्रदान कर दिया। राममोहन राय और विद्यासागर वांछित प्रशासनिक व कानूनी समर्थन प्राप्त करने में इसी की वजह से सफल हुए। 1817 में, पंडित मृत्युञ्जय विद्यालंकार ने घोषित किया कि सती को कोई "शास्त्रीय" अनुमति नहीं है। एक वर्ष बाद गवर्नर विलियम बैंटिंक ने अपने प्रान्त, नामत: बंगाल, में सती-प्रथा निषिद्ध कर दी। इस निषेध को सती निषेध अधिनियम, 1929 के रूप में भारत के अन्य भागों में सती निषेध अधिनियम, पहुँचने में 11 वर्ष लग गए।

24.2.2 विधवा-पुनर्विवाह

1850 के दशक में पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने, पंडित मृत्युञ्जय की ही भाँति, शास्त्रों से सिद्ध किया कि किसी विधवा का पुनर्विवाह स्वीकृत है। उन्होंने रूढ़िवादी पंडितों के साथ तर्क-वितर्क और तत्कालीन हिन्दू-समाज के कुछ स्तंभों द्वारा उपहास के बीच से एक लम्बी, कठिन यात्रा तय की। वर्नाक्यूलर (बंगाली) प्रैस समर्थन में और विरुद्ध दोनों ही प्रकार के स्तुति-गान और व्यंग्यों से भर गई। इस प्रकार के पद्य-छंद बुने हुए कपड़ों के डिज़ायनों पर दिखाई पड़ते थे। इन्होंने समाज में उथल-पुथल पैदा कर दी। विद्यासागर ने 1855 में गवर्नर-जनरल के पास एक याचिका दायर की।

सन् 1871 में मद्रास में एक विधवा पुनर्विवाह परिषद् बनी, पर ज़्यादा चली नहीं। 1879 में, वीरसालिंगम ने मुख्यत: विधवा पुनर्विवाह पर संकेन्द्रित राजमुन्द्री समाज-सुधार परिषद् शुरू की। 1892 में, यंग मद्रास पार्टी या हिन्दू समाज-सुधार परिषद् प्रारंभ की गई। आर्यन् ब्रदरहुड कान्फ्रेंस, जिसके रानाडे व एन.एम. जोशी सदस्य थे, ने एक बाद अपनी एक सभा में घोषणा की, "हमें इस अनुरक्त विश्वास के साथ रूपाली पुलाव बनाते और अधिक नहीं रहना है कि चूँकि हम अब तक ख्याली पुलाव बनाते और अधिक नहीं रहना है कि चूँकि हम अब तक उत्तरजीविता कायम रखने में सफल रहे हैं अपनी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के रहते, हम हमेशा इसे कायम रख सकेंगे"

अधिनियम पास किए जाने से लेकर कोई चालीस वर्षों में मात्र 500 विधवाओं के पुनर्विवाह हुए, यद्यपि इस सिद्धांत की हिमायत करते समाज-सुधार संगठन देश भार में कुकरमुत्तों की तरह फैले थे। उनमें से अधिकांश थीं बाल अथवा अक्षत विधवाएँ। उच्च जाति की विधवाएँ, जो अक्षत नहीं थीं, न तो पुनर्विवाह कर सकती थीं। न ही उन्होंने किया।

24.2.3 वैश्याओं का पुनर्वास

अन्य उल्लेखनीय, जो नारी-विरोधी सामाजिक-धार्मिक प्रथाओं में सुधारों के लिए लड़े, थे – ज्योतिबा फुले, सरस्वती कर्वे तथा पंडिता रमाबाई, सिस्टर निवेदिता और टैगोर की बहन स्वर्णकुमारी देवी जैसी महिलाएँ। बंगाल मधुसूधन दत्त और हेनरी डिरोज़िओ जैसे दुर्जेय मनीषियों का प्रत्यक्ष गवाह था। ये दोनों सशक्त कवि भी थे। उन्होंने पुरुष नैतिकता पर भी प्रहार कर सुधारकों के क्रोध को बुलावा दिया। मधुसूदन ने वैश्याओं को संगठित किया और उन्हें इस की बजाय अभिनय के पेशे को चुनने के लिए प्रेरित किया।

सन् 1869 के 'अमृत बाज़ार पत्रिका' में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार, कलकत्ता की नब्बे प्रतिशत वैश्याएँ विधवाएँ ही थीं, जिनमें से अधिकांश कुलीन ब्राह्मण परिवारों से आई थीं। यह "कुलीन" था ब्राह्मणों का सर्वाधिक घृणित वर्ग जिसका सामाजिक रूप से स्वीकृत जीवकोपार्जन था विवाह करते रहना और दहेज जोड़ते रहना। उनका दैनिक जीवन भी सर्वथा स्वतंत्र था जैसा कि वे अपनी पत्नियों के पैतृक घरों को जाते ही रहते थे क्योंकि इन 'ब्याहता' स्त्रियों को अपने पिताओं के घर पर ही रहना पड़ता था। ऐसी 'पत्नियों' की संख्या बड़े आराम से 100 तक हो सकती थी। इस प्रकार, मृत्यु (एक पति की) के एक धक्के से ही कम-से-कम 100 विधवाएँ वैश्याओं के रूप में बाज़ार में उपलब्ध हो जाती थीं।

हमें इस तथ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि विद्यासागर, विधवा-पुनर्विवाह के सूत्रधार और महान् नायक, वैश्याओं के पुनर्वास की इस योजना के प्रति एक नैतिक जुगुप्सा-भाव रखते थे और बहुविवाह की इस बीभत्स प्रथा को रोके जाने का कोई विचार नहीं रखते थे। कौतुक की बात है, वह यह नहीं समझ सके कि यदि बहुविवाह को सख़्ती से रोका जाए तो विधवाओं की संख्या प्रबल रूप से घटेगी और इस प्रकार इस समस्या की भयावहता काफ़ी कम हो जाएगी।

24.2.4 आर्य समाज

स्वामी दयानन्द अपने समय के सच्चे क्रांतिकारी थे। उन्होंने जाति-प्रथा का परित्याग किया और शास्त्रों से उद्धृत कर महिलाओं से समाज बरताव निर्धारित किया। उनके आर्य समाज ने महिलाओं पर ऐसे कोई कर्त्तव्य या दायित्व नहीं थोंपे जो हिन्दू विधिप्रदायों के अनुसार पुरुषों के लिए प्रयोज्य नहीं थे। अपनी प्रतिनिधि पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में, दयानन्द ने इस बात पर ज़ोर दिया कि आर्य-भारत में बहुविवाह, बाल-विवाह और नारी-विविक्ति अस्तित्व में नहीं थे। उन्होंने आह्वान किया कि लड़के और लड़कियाँ दोनों के माध्यम से परम्परा और आधुनिकता पर समान ज़ोर दिया जाए। उन्होंने लड़कियों और लड़कों के लिए विवाह-योग्य आयु बढ़ाकर क्रमशः 16 और 25 वर्ष कर दी।

परन्तु लाला लाजपतराय और लालचन्द जैसे आर्यसमाजी महिलाओं की उच्च शिक्षा के खिलाफ थे। उनका मानना था कि आख़िरकार, 'लडकियों की शिक्षा का स्वरूप भिन्न होना चाहिए, क्योंकि 'उनको दी जाने वाली शिक्षा ऐसी हो जो उन्हें नारी भूमिका से अनजान न बना दे (unset them)। मौलिक साक्षरता के अलावा, अंकगणित और कुछ काव्य आर्य-समाज धार्मिक साहित्य, सिलाई, कढ़ाई, खाना-पकाना, स्वच्छता, चित्रकला तथा संगीत पढ़ाए जाने वाले विषय पढ़ाए जाते थे। ब्रह्म समाज जो मूर्ति-पूजा और ब्राह्मणवादी हिन्दूवाद के पतनोन्मुखी आदर्शों और प्रथाओं के विरोधी के रूप में आरंभ हुआ, लड़कियों और स्त्रियों के विषय में इस रूढ़िबद्ध धारणा के द्योतन से युक्त नहीं था। यह द्योतन हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के परवर्ती चरणों तक जारी रहा। एकमात्र असहमत स्वर सुभाषचन्द्र बोस का था। युगों को महिलाओं के "हेतु" और "द्वारा" में बाँटे जाने के पीछे जो औचित्य था वो नहीं छुपा था। महिलाएँ, उस समय, पुरुषों को स्वीकृत अथवा प्रदत्त हर चीज़ की माँग करने के लिए न तो जागरूक थीं न ही संवेदनशील।

24.2.5 बाल-विवाह निषेध

सन् 1860 में एक अधिनियम पास करके विवाह-योग्य आयु 10 वर्ष निर्धारित कर दी गई। बहरम मालाबारी, स्वयं कोई हिन्दू नहीं, (एक पारसी) ने शताब्दी के अंत में इस अधिनियम के समर्थन में एक अभियान शुरू किया। वह काफ़ी संख्या में वकीलों, डॉक्टरों, अध्यापकों और जन-सेवकों को राज़ी करने में सफल रहे। वे मानते थे, जो कि जैसोर इण्डियन एसोसिएशन के एक वक्तव्य में

प्रतिध्वनित हुआ, कि "अल्पायु विवाह किसी देश की शारीरिक शक्ति को कमज़ोर करता है; यह उसकी पूर्ण वृद्धि व विकास को रोकता है; यह व्यक्तियों के साहस और ऊर्जा को प्रभावित करता है और शक्ति और दृढ़ निश्चय में कमज़ोर लोगों की प्रजाति को जन्म देता है।'' 1891 में, तिलक ने इस अधिनियम के ख़िलाफ एक आंदोलन चलाया और टैगोर जैसे एक आधुनिक दृष्टा ने कथनी और करनी में विरोध किया!

सुधार आंदोलन बम्बई-पूना सांस्कृतिक क्षेत्र में सशक्त थे कि कुछ तो हिन्दूवाद के यथार्थवाद ब्राह्मणवाद पर प्रश्न करने का साहस भी रखते थे। उदाहरण के लिए, जी० एच० देशमुख, एक समाज-धर्म सुधारक, ने 1840 के दशक में तर्क प्रस्तुत किया कि "ब्राह्मणों को अपनी मूर्खतापूर्ण धारणाओं को त्याग देना चाहिए और उनको यह स्वीकार करना चाहिए कि सभी मनुष्य समान हैं और यह कि सभी को ज्ञानार्जन का अधिकार है ''। लेकिन 1871 में, उन्होंने जातिच्युत किए जाने की धमकी के आगे हार मान ली। परिणामत:, वे नरम पड़ गए।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) उन्नीसवीं सदी को क्यों महिलाओं का युग कहा जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) विधवा-पुनर्विवाह को लागू करने के विभिन्न प्रवासों के विषय में आप क्या जानते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) दयानन्द सरस्वती का समाज सुधार में क्या योगदान था?

.....

.....

.....

.....

.....

24.3 महिलाओं हेतु शिक्षा और पहचान के साथ उभरती महिलाएँ

24.3.1 साहित्य में महिलाएँ और महिलाओं द्वारा साहित्य

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक, समाज-सुधार आंदोलन प्रभाव दिखाने लगे थे; आत्मविश्वास और दृढ़निश्चय कुछ महिलाओं के जीवन और कार्य में दिखाई देना शुरू हो गया। निरूपमा देवी और अनुरूपा देवी जैसे उपन्यासकारों का संदर्भ बांग्ला साहित्य समाजों में दिया जाने लगा था और उन्हें उन साहित्य क्लबों की सदस्यता भी दी गई जहाँ पुरुषों का वर्चस्व था। टैगोर के उपन्यास और लघु-कथाएँ उन स्त्री-पात्रों से भरे हैं जो अपने पतियों व अन्य पुरुष-प्रेमियों कुछेक उदाहरण हैं– टैगोरकृत 'गोरा' और 'घरे-बायरे', बंकिमचन्द्र कृत 'आनंदमठ' और 'देवी चौधरानी' तथा शरत्चन्द्र कृत 'पाथेर देवी'। टैगोरकृत 'चार अध्याय' में, अपनी पहचान तलाशती एक राष्ट्रवादी महिला, उस पुरुष-नेतृत्व द्वारा आलोचना का शिकार बनती है और दबा दी जाती है, जोकि आज भी उस राजनीति का प्रतीक है जो विस्तीर्ण रूप से एक पुरुष अधिकार-क्षेत्र रही है। प्राय: सभी महिला सक्रियतावादी साहित्य-लेखक भी थीं; साहित्यिक पुट लिए मुद्रित-सामग्री व लेख सामान्यत: अधिकांश पुरुष स्वतंत्रता सैनानियों द्वारा सह-हथियार के रूप में भी प्रयोग किए जाते थे। महिलाओं के बीच कुछ उल्लेखनीय नाम थे – नागेन्द्रकला मुस्तफ़ी, मनकुमारी बसु और कामिनी रॉय। काशीबाई कानित्कर महाराष्ट्र से प्रथम महिला-उपन्सायकार थीं। अन्य थीं – मैरी भोरे, गोदावरीबाई समस्कर, पार्वतीबाई और रुक्मिणीबाई। दक्षिण में, कमला साथीनन्दन, 'इण्डियन लेडीज़ मैगज़ीन' की सम्पादक, एक लेखक भी थीं। सरला देवी, कुमुदिनी मित्रा और मैडम कामा ने क्रांति के सिद्धांत को बढ़ावा देने हेतु पत्रकारिता में अपनी पहचान छोड़ी।

24.3.2 अधिकारों हेतु महिलाएँ

मैडम कामा को स्टुटआर्ट में 1907 में कांग्रेस ऑव दि सोशिअलिस्ट इण्टरनैशनल में एक 'वन्दे मातरम्' ध्वज फहराने का सम्मान प्राप्त था, और 1913 में, कुमुदिनी मित्रा, एक "आतंकवादी" के रूप में अधिक विख्यात, को बुडापेस्ट, इंगरी में इण्टरनैशनल विमन्'स सफ़रिज कॉन्फ्रैंस में आमंत्रित किया गया। सरोजिनी नायडू ने भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधारों की एक श्रृंखला की माँग करने हेतु मोण्टैग्यू और लॉर्ड चैम्सफोर्ड की अध्यक्षता वाली समिति से भेंट की। सरला देवी ने भारत स्त्री महामण्डल की ओर से अनेक बार इस समिति के समक्ष प्रतिनिधित्व किया। 1892 में छठी नैशनल सोशल कॉन्फ्रैन्स में, हरदेवी रोशनलाल, 'भारत-भगिनी' की सम्पादक, ने इस बात पर ज़ोर दिया कि यह मंच कांग्रेस की अपेक्षा 'अधिक महत्त्वपूर्ण' है, क्योंकि यह मानता है कि :

> महिला का हेतुक पुरुष का है
>
> वे साथ-साथ उदित हों, अथवा निमग्न,
>
> वामनकृत अथवा देव-तुल्य, अथवा मुक्त।

आनन्दीबाई जोशी प्रथम महिला-डॉक्टर थीं। उन पर और कान्तिबाई पर पत्थर फेंके गए जब उन्होंने जूते पहनने और गलियों में छतरियाँ लेकर चलने का साहस किया। ये पुरुष और जाति-प्रभुत्व के प्रतीक थे। महिलाओं की स्थिति निम्न जातियों अथवा अछूतों की स्थिति से क्या बेहतर थी? 1882 में, ताराबाई शिन्दे की पुस्तक, *स्त्री-पुरुष तुलना* ने हर ओर गर्मागर्म बहस को जन्म दिया। उन्होंने जोर देकर कहा कि वे दोष जो सामान्यत: स्त्रियों के मत्थे मढ़ दिए जाते हैं, जैसे कि अंधविश्वास, संदेह, विश्वासघात और औद्धत्य, पुरुषों में भी समान रूप से पाए जा सकते

हैं। उन्होंने स्त्रियों को सुझाव दिया कि, अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति से, वे हमेशा सद्व्यवहार करें, अग्नि की भाँति शुद्ध रहें और आन्तरिक और बाह्य रूप से निष्कलंक रहें। ताराबाई ने यह भी जताया कि पुरुषों को अपना सिर शर्म से झुकाना पड़ेगा।

माई भगवती, आर्यसमाज की एक 'उपदेशिका', हरियाणा में एक विशाल जन-सभा में बोलने को आत्मविश्वास रखती थीं। 1881 में, घर पर ही अपने पति द्वारा शिक्षित, मनोरमा मजूमदार बारीसाल ब्रह्म समाज द्वारा धर्म-प्रचारिका नियुक्त की गई। जैसा कि शंका थी, बड़ी गर्मागर्म बहस छिड़ी, जिसमें महिला समानता के विषय को लेकर चलती 'बुद्धिमानी' को कुछ ज्यादा ही आगे ले जानेपर सवाल किए गए। राष्ट्रवादी अभियानों और संगठनों और संगठनों ने एक ऐसा जोश पैदा किया कि ब्रह्म समाज की कुछ महिलाओं ने पर्दा-प्रथा की बुराइयों के विरुद्ध गीत और भाषण प्रस्तुत करते हुए कलकत्ता की गलियों में मार्च किया। ये महिलाओं "द्वारा" पहल अथवा आंदोलन किए जाने के निर्विवाद दृष्टांत हैं। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व अन्य राजनीतिक दल महिलाओं के बीच इस आंतरिक शक्ति को स्वीकार करने को अभी तक तैयार नहीं थे। यद्यपि महिला प्रतिनिधियों को उन परिधियों में बैठने की स्वीकृति होती थी, उन्हें प्रस्तावों पर बोलने अथवा मत व्यक्त करने की अनुमति नहीं थी।

24.3.3 महिलाओं हेतु महिलाएँ

रवीन्द्रनाथ टैगोर की बहन स्वर्णकुमारी देवी ने विधवाओं को सीखने, पढ़ाने और इस प्रकार महिलाओं के बीच शिक्षा के सर्वाधिक सशक्त प्रसार-अभिकर्त्ता बनने हेतु प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से 'सखी समिति' शुरू की। इस समिति ने आत्म-विश्वास (आत्म-शक्ति) और राष्ट्रवाद का विकास करने के एक साधन के रूप में महिला-केन्द्रिक कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए शिल्प-मेलों का आयोजन किया। कांग्रेस को इस प्रकार के मेलों की बड़ी उपयोगिता नज़र आई, लेकिन पुरुष नेतागण एक पृथक् महिला-वर्ग को संगठित करने के सिवा कुछ नहीं सोच सके।

स्वर्णकुमारी देवी की पुत्री, सरला देवी, आश्चर्यजनक रूप से दुर्जेय थी। वह घर के 'पिंजरे' या 'कैद' से निकलना चाहती थी और पुरुष की भाँति एक स्वंतत्र आजीविका का अपना अधिकार प्रमाणित करना चाहती थी। उसने 1902 में एक व्यायामशाला शुरू की, जहाँ स्त्रियों को तलवार और लाठी चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। उसको युद्धप्रिय राष्ट्रवाद या फिर क्रांतिकारी आतंकवाद का शिल्पकार कहा जा सकता है।

24.3.4 राष्ट्रवादी संघर्ष में महिलाएँ

बंगाल में 1905-8 का स्वदेशी आंदोलन एक वृहद् स्तर पर राष्ट्रवादी गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी की शुरुआत को दर्शाता है। इस आंदोलन हेतु अनेक पत्नियों, बहनों और पुत्रियों ने समर्थन गुट बनाने शुरू कर दिए। मध्यम-वर्ग राष्ट्रवाद ने औरतों और लड़कियों को ऐसी प्रेरणा दी कि उन्होंने धन के साथ-साथ आभूषण भी अर्पित कर दिए। गाँवों में से योगदान के रूप में मुट्ठी भर-भर अनाज आया।

युद्धप्रियता महिलाओं की सक्रिय अन्तर्भावितता वाली समितियों का एक ऐसा लक्षण बन गया कि जनवरी 1909 में पश्चिम बंगाल में ऐसी पाँच समितियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया, नामत: स्वदेशी, बांधव, ब्राती, ढाका अनुशीलन सुहृद और साधना।

पुराणी अज्ञावती, हिसार आर्य समाज की एक महिला-सदस्या, ने इस बात का निवेदन करते हुए लगभग पूरे पंजाब का भ्रमण किया कि माँएँ अपने लड़कों की परवरिश विनिर्माताओं व व्यापारियों

के रूप में करें। उन्होंने लोगों को इस बात पर राजी करने को प्रयास भी किया कि जातिगत आदर्शों का सख्त और अन्ध अनुपालन माँओं को महान् सपूत देश को अर्पित करने से रोकता है। दिल्ली में, अज्ञावती ने विधवाओं को संगठित करने हेतु एक "विधवा आश्रम" खोला; न सिर्फ दमन के सिरुद्ध व उनके शिक्षा के अधिकार हेतु, बल्कि उनको युद्धप्रिय राष्ट्रवाद में प्रशिक्षित करने हेतु भी। सरकार जो उनकी गतिविधियों से काफ़ी भयभीत थी, ने उनका "एक बहुत बहादुर महिला" के रूप में वर्णन किया।

24.3.5 समानता हेतु महिलाएँ

1906 में कलकत्ता में भारतीय समाज सम्मेलन को संबोधित करते हुए सरोजिनी नायडू ने कहा, "शिक्षण का अर्थ ज्ञान का संचय हो सकता है, किन्तु शिक्षा एक अपरिमेय, सुंदर और अपरिहार्य वातावरण है जिसमें हम रहते हैं और आगे बढ़ते हैं तथा अपना अस्तित्व रखते हैं तब कैसे कोई आदमी एक मानवीय आत्मा को उसकी स्वतंत्रता और जीवन के स्मरणातीत उत्तराधिकार से वंचित करने की हिम्मत कर सकता है? तुम्हारे पुरखों ने तुम्हारी माताओं को उस जन्माधिकार से वंचित करते-करते तुम्हें, अपनी संतानों को, तुम्हारी विधिसंगत विरासत से वंचित कर दिया। इसीलिए, मैं तुम्हें अपनी स्त्रियों को फिर से पुनर्प्रतिष्ठित करने का कार्य सौंपती हूँ उनके अधिकार तुम, इसी वज़ह से, वास्तविक राष्ट्र-निर्माता नहीं हो अपनी स्त्रियों को शिक्षित करो और राष्ट्र इनका ध्यान स्वयं रखेगा "

1920 में, महिलाओं के बीच जो महान् उपलब्धि का और उनके लिए खुल रहे नए दरीचों का भाव था वह तमिल राष्ट्रवादी कवि सुब्रह्मण्यम भारती द्वारा उनकी कविता "मुक्ति का नृत्य" (दि डांस ऑव लिबरेशन) में बड़ी सुंदरता से व्यक्त हुआ –

नाचो! खुशियाँ मनाओ!

वे जो कहते थे

महिलाओं के लिए पुस्तकें छूना पाप है,

मर चुके हैं।

वे पागलव्यक्ति जो कहते थे

महिलाओं को उनके घरों में कैद कर देंगे,

अब अपना मुँह नहीं दिखा सकते हैं।

उन्नीसवीं सदी के 10वें व 20वें दशक के उत्तरार्ध में, महिलाओं के बीच समानता पर एक संलाप विकसित होना शुरू हो गया। उन्होंने समान अधिकारों के लिए अपनी माँगों के पक्ष में राष्ट्रवादियों की दलीलों का प्रयोग किया। उर्मिला देवी, एक युद्धप्रिय महिला, ने 'स्वराज' को स्व-शासन के रूप में और 'स्वाधीनता' को अपने पर शासन करने की "शक्ति और सत्ता" के रूप में परिभाषित किया। अमिया देवी ने ठीक ही महसूस किया कि 'स्वाधीनता' दी नहीं जा सकती, यह बलात् लेनी पड़ती है अगर वह "शुभेच्छु" पुरुषों के पास छोड़ दी जाती है, तो महिलाओं की अधीनता (निर्भरता) साथ ही बलवान हो जाएगी। राष्ट्रवादी नेतागण, जो महिलाओं को विश्वास रखते थे न कि समरूपता में, जो कि क्रांतिकारी महिलाओं की माँग थी। सुधारक और 'प्रदायक' मानते थे कि माँओं के रूप में महिलाओं की सामाजिक रूप से उपयोगी भूमिका के कारण ही महिला-अधिकारों को मान्यता मिलनी चाहिए। महिलाओं ने समान अधिकारों की माँग इसलिए की कि मानव के रूप में उनकी भी वही आवश्यकताएँ, वही इच्छाएँ और वही क्षमताएँ हैं, जो पुरुषों की हैं।

प्रभावती संयुक्त राज्य अमेरिका में "फ्रीडम फॉर एण्ड आयरलैण्ड" नायक एक गुट के लिए काम करती थीं और रेणुका राय इंग्लैंड में "लीग अगेन्स्ट ब्रिटिश इम्पिरिअलिज़्म" के साथ जुड़ी थीं। प्रभावती ने एम.एन. रॉय, भारत में कम्यूनिस्ट आंदोलन के अग्रणी, से विवाह किया और क्रांतिकारियों व कम्यूनिस्टों के साथ समान रूप से शामिल हो गईं। उन्होंने 'कामगार व किसान पार्टी' के एक सदस्य के रूप में सफ़ाईकर्मियों को संगठित करने के लिए मुज़फ्फर अहमद, कवि नज़रुल इस्लाम और हेमन्त कुमार सरकार के साथ-साथ मिलाया।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) औपनिवेशिक काल में अधिकारों के लिए महिलाओं के प्रथम संघर्ष पर संक्षेप में लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) राष्ट्रवादी संघर्ष में पुराणी अज्ञावती की क्या भूमिका थी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान महिलाओं ने "स्वराज" और "स्वाधीनता" को कैसे परिभाषित किया?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

24.4 महिलाओं की स्वतंत्र राजनीतिक पहचान

24.4.1 राजनीति में महिलाओं के प्रति भेदभाव

गाँधीजी द्वारा उनकी 71 दांडी-मार्चकर्त्ताओं की सूची में एक भी महिला को नहीं चुना गया था। सुविख्यात महिलाओं, जैसे खुर्शीद नौरोजी और मागरिट, कज़िन्स, ने प्रबल विरोध किया। लेकिन यह नेता यह तर्क देते हुए अपने निर्णय पर अडिग रहे कि उन्होंने "महिलाओं को मात्र नमक-कानूनों को तोड़ने से कहीं अधिक बड़ी भूमिका'' सौंपी है। लेकिन सरोजिनी नायडू खुले आम विरोध किया और मार्च के अंतिम चरण में दांडी में शामिल हो गईं तथा उस आंदोलन में गिरफ्तार होने वली प्रथम महिला हुईं। एक बार की अवज्ञा ने ही रास्ता साफ कर दिया, और हज़ारों महिलाएँ नमक सत्याग्रह में शामिल हो गईं। इसको सामान्यत: इस रूप में याद किया जाता है कि स्वतंत्रता हेतु संघर्ष में पहली बार "भारतीय महिलाओं का हुजूम'' शामिल हो गया। खाबिंद अपनी बीवियों के जेल में होने पर फ़क्र महसूस करने लगे; लेकिन वे बुरा मान जाते थे यदि उनकी पत्नियों ने पहले उनकी अनुमति न ली हो। इन पत्नियों में कुछ ग़ौरतलब थीं – कस्तूरबा गाँधी, कमलादेवी चटोपाध्याय, नेल्ली सेनगुप्त, बसन्ती देवी (रॉय), दुर्गाबाई देशमुख और अरुणा आसफ अली।

24.4.2 राजनीति में महिलाओं की पहल

1890 के दशक में लीलावती मित्र ने विधवा-पुनर्विवाह सम्पन्न कराने के लिए इच्छुक वरों को आश्रय देकर विद्यासागर की मदद की। इलबर्ट बिल के समर्थन में सभाएँ करने और बिल्ले लगाने हेतु बेथ्यून स्कूल में लड़कियों को संगठित करते हुए, कामिनी रॉय इलबर्ट बिल आंदोलन में सक्रिय थीं। उन्होंने बंग महिला समिति के साथ उनके समाज-सुधार परियोजनाओं में काम किया। अघोरकामिनी नारी समिति ने चाय-बागान मालिकों द्वारा महिलाकर्मियों से दुर्व्यवहार के विरुद्ध जनमत तैयार किया। प्रभावती मिर्जा ने अरविन्द के आतंकवाद से प्रेरणा प्राप्त की। मात्र दस वर्ष की आयु में उन्होंने खुदीराम की फाँसी के विरोध में उपवास किया और बाद में 1930 के दशक की एक प्रतिबद्ध श्रमिक-संघवादी के रूप में उभरकर आयीं।

24.4.3 महिला "आतंकवादी"

कुमुदिनी मित्र ने उन शिक्षित ब्राह्मण महिलाओं के एक समूह को संगठित किया था जो छुपे हुए क्रांतिकारियों के बीच संपर्क करके उन्हें एक साथ मिलाती थीं। "आतंकवादियों'' के रूप में जाने, भय खाने और आदर दिए जाने वाले क्रांतिकारी गुटों के साथ महिलाएँ उत्तरोत्तर रूप से शामिल हुईं। दिसम्बर 1931 में, शांति घोष और सुनीति चौधरी ने एक जिला दण्डाधिकारी, मि. स्टीवन्स को गोली मार दी, जिसने महिलाओं को इतना परेशान कर रखा था कि जितना शायद कानून इजाज़त नहीं देता था। मीना दास ने 1922 में बंगाल के गवर्नर, स्टेनली जैक्सन को गोली मारने का प्रयास किया था। उन्होंने सब अपने आप ही किया था और प्रथम दो को उम्रभर के लिए देश-निकाला मिला। प्रीतिलता वाडेकर के नेतृत्व में एक ऐसे क्लब पर धावा बोला गया जहाँ यूरोपियन बहुधा आया-जाया करते थे। इस बम से एक मरा और चार घायल हुए। पुरुष-परिधान पहले प्रीतिलता ने गिरफ़्तारी से बचने के लिए सायनाइड खा लिया। इस आशय का एक कागज़ उसके पास से बरामद हुआ कि यह धावा एक "संग्राम-प्रदर्शन'' था। उसी दिन ब्रिटिश शासकों व यूरोपियनों के विरुद्ध अभियान में शामिल होने के लिए अध्यापकों, छात्रों व जनता को प्रेरित करते पर्चे बाँटे गए। सरला देवी एवं सिस्टर निवेदिता भी बंगाल आतंकवादियों से काफी नज़दीक से जुड़ी थीं और उनसे प्रेरित भी थीं।

24.5 महिला एकता अथवा संयुक्त संचलन के सामने मुख्य मुद्दे

24.5.1 सम्प्रदाय और जातिवाद

अखिल-भारतीय महिला सम्मेलन (ऑल-इण्डिया विमिन्स कॉन्फ्रेन्स – ए. आई. डब्ल्यू. सी.) द्वारा तीसरे दशक में उठाया गया। 1932 में उनकी जिला शाखाओं एवं वार्षिक सम्मेलन दोनों ने साम्प्रदायिक मापदण्ड अपनाने वाले विधान-मंडलों में महिलाओं के लिए अलग सीटों के आरक्षण के खिलाफ़ विरोध आयोजित किए। बम्बई शाखा, उदाहरण के लिए, धावा राहत में शामिल हो गई और आंध्र प्रदेश शाखा ने स्कूलों में धार्मिक प्रार्थनाओं के विरुद्ध एक अभियान छेड़ा। इस संगठन ने, शायद, पहली बार एक समान व्यवहार संहिता हेतु माँग उठायी ताकि महिलाओं को धार्मिक फैसलों व जाति बंधनों द्वारा दमित व उत्पीड़ित न किया जा सके। उन्होंने भारत की सभी महिलाओं के लिए पूरी तरह से समान कानून की माँग की – उनकी जाति अथवा धर्म चाहे जो भी हो।

24.5.2 दमन से दैनिक मुठभेड़

i) मद्य के विरुद्ध

दुर्भाग्यवश, चालीस के दशक तक कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच उत्तरोत्तर बढ़ते शत्रुतापूर्ण संबंधों के फलस्वरूप साम्प्रदायिक खुद इनके सदस्यों में ही दिखलाई पड़ते थे। 1944 तक अधिकांश मुस्लिम महिलाएँ ए.आई.डब्ल्यू.सी. छोड़ चुकी थीं। विभाजन और पाकिस्तान प्रवसन के बाद उन्होंने इस संगठन का उद्देश्य ही भुठला दिया और 'ऑल-पाकिस्तान विमिन्स कॉन्फ्रेन्स' बना ली। भारत में ए.आई.डब्ल्यू.सी. ने सम्प्रदायवाद, जातिवाद और पितृतंत्रीय दमन के विरुद्ध कार्य जारी रखा और सभी धार्मिक गुटों से सदस्य बनाना आरंभ कर दिया, यद्यपि हिन्दू और दलितों की संख्या कहीं अधिक है।

जब से साम्प्रदायिक आधार पर देश को बाँटा गया है, साम्प्रदायिक और जातिवाद ने भयावह रूप से हिंसात्मक और भद्दा रूप ले लिया है; निम्न जातियों की और धार्मिक व प्रजातीय अल्संख्यकों की असहिष्णुता कुलाँचें भरती बढ़ चुकी है; विरोध और आत्म-रक्षा में महिलाओं के बीच संघटन भी और अधिक सशक्त और व्यापक हो गया है। पितृतंत्र से संबंधित व उससे जन्मे दमन के अन्य तरीकों तथा कुछ ही हाथों में धन व सत्ता के संकेन्द्रण ने भी संख्या इतनी बड़ी है व उनकी गतिविधियों का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इस अध्याय की अत्यधिक सीमित परिधि में उनमें से प्रत्येक पर टिप्पणी करना नितान्त असंभव है। छात्रों को अपने सामान्य ज्ञान व दैनिक समाचारपत्र पठन पर भरोसा करना होगा।

1972 में मद्य-पात्रों को तोड़कर भील महिलाओं ने सबसे पहले मद्य संतर्जना के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई। उसके बाद ऐसे अनेक आन्दोलनों का पता लगा जिनमें सबसे अधिक कायम और कामयाब रहा आंध्र प्रदेश के नेलौर में ताड़ी-विरोध आंदोलन। महिला-हितों के लिए संघर्षरत स्त्रियों व पुरुषों द्वारा पत्नी से मारपीट व पारिवारिक हिंसा के पीछे एक महती कारण के रूप में मदात्यय को ही समझा गया। किसी परिवार की अनन्त वा निरंतर दरिद्रता का कारण मुख्यत: है भी यही क्योंकि आदमी की आय इसी संतर्जन पर ही अपव्यय होती है। यही कारण है कि सभी महिला-विकल्प दहेज व यौन-उत्पीड़न के अलावा, शराब को भी एक मुख्य मुद्दे के रूप में लेते हैं, वास्तव में सभी मद्य-विरोधी आंदोलन धीरे-धीरे महिलाओं के सामने खड़ी अन्य सभी समस्याओं के साथ घनिष्टता से सम्बद्ध हो गए। यहाँ तक कि पर्यावरण-रक्षा हेतु आंदोलन, यानी चिपको आंदोलन; समान

भू-सम्पत्ति अधिकारों हेतु आंदोलन, यानी बोध गया; और उत्तरांचल की भाँति एक अलग राजनीतिक सत्ता हेतु आंदोलन भी अपने को युग-युग से चल रही रोज़ाना को उन समस्याओं से अलग नहीं कर सके जिन्होंने महिलाओं, खासकर सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को स्वतंत्रता की किरण भी न देखने दी।

ii) दहेज के विरुद्ध

1975 में दहेज के विरुद्ध प्रथमत: सशक्त आंदोलन आयोजित करने वाला था प्रगतिवादी महिला-संगठन, हैदराबाद। यह अपने प्रदर्शनों में 2000 से भी अधिक स्त्री-पुरुषों को आकृष्ट कर लिया करता था तथा यह शेष महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, गुजरात और यहाँ तक कि पंजाब व बंगाल तक भी फैल गया। लेकिन इस आंदोलन ने गहरी जड़ें दिल्ली व उसके आसपास ही जमाईं क्योंकि उक्त समस्या इस सांस्कृतिक क्षेत्र में ही अधिक प्रचण्ड व वीभत्स थी, और है। इस विषय में दिल्ली में महिला दक्षता समिति अग्रणी थी। अब इसका कार्यक्षेत्र, इस प्रकार के अन्य सभी संगठनों के उदाहरण की ही भाँति, महिला-उत्पीड़न व दमन से संबंधित अन्य सभी क्षेत्रों में व्याप्त हो चुका है।

iii) यौन दुष्प्रयोग के विरुद्ध

महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में सर्वाधिक सामान्य व प्रापिक, तथा अभी सबसे ज्यादा लुके-छिपे, हैं– बलात्कार व यौन-उत्पीड़न के अन्य प्रकार। यही है पुरुष सत्ता के हाथों में सर्वाधिक सुलभ और अहं-तुष्टिपूरक हथियार, न सिर्फ स्त्रियों के अभिभूत करने के लिए भी। परिवार के भीतर अथवा स्वयंकृत कायेच्छा या विद्वेषवश बलात्कारों के अतिरिक्त, साम्प्रदायिक और जातीय तनावों में और पुलिस हिरासत में बलात्कार नितान्त सामान्य घटना है। बलात्कार के विरुद्ध आंदोलन, प्रथम बार, पुलिस बलात्कार के विरुद्ध आरंभ हुआ। पुलिस हिरासत में रलमेज़ा बी का बलात्कार प्रतीक बन गया। क्षेत्र, समर्थन और शेष में यह आंदोलन हमेशा बढ़ता रहा है, अभी वारदातों की संख्या में ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति पर लगाम नहीं लग पा रही है। शक्ति शालिनी, सासबाला महिला संघ व जनवादी महिला समिति इस क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय नाम है। तीसरा नाम अपने राजनीतिक संघर्षों में भी महिलाओं को संगठित करता रहा है। सभी वर्ग की महिलाओं के लिए नवीनतम अभिभावी विषय, वास्तव में रहा है – देश के उच्चतम निर्णय-लेने वाले निकायों में सीटों का आरक्षण।

पुरुष प्रभुत्व के सभी रूप, वास्तव में, महिलाओं की आर्थिक निर्भरता पर आधारित थे। इस प्रकार नारी उत्पीड़न के दो प्राथमिक आधारभूत ढाँचे थे – श्रम का लैंगिक विभाजन तथा संस्कृति व राजनीति जिसने इसको युक्ति-संगत बनाया। दूसरी ओर, महिला समता सैनिक दल, अन्य अधिकांश महिला-निकायों की भाँति, यह मानता था कि पुरुषों की लैंगिक सुख की निकृष्ट इच्छा ने ही उन्हें नारी को दासी बनाने की ओर प्रवृत्त किया है। हिंसा के विभिन्न प्रतिरूपों के विरुद्ध आंदोलनों के विषय में जो ध्यानाकर्षक है और महिला-आंदोलन मूल रूप से, प्रतिरोध हेतु आग्रह और विरोध के रूप में उभरे हैं, यह है कि इन्होंने महिलाओं के प्रति अनेक विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को एक साथ कैसे सन्निविष्ट कर दिया : नारी अधिकारवादी से पितृतंत्र-विरोधी से पूँजीवादी-विरोधी से कल्पनालोकी पितृतंत्रवाद। इनमें अंतिम को कथित स्थिति में वे पुरुष रखते हैं जो यह महसूस करते हैं कि अपनी स्त्रियों हेतु विरोध करना और उन्हें संरक्षण देना उनकी ही जिम्मेदारी है।

उन मित्रताओं के नारी-अधिकारवादी आंदोलन में व्यक्तिगत संबंधों का एक सम्पूर्ण नया समुच्चय विकसित हुआ, जो वर्ग, जाति सांस्कृतिक व्यवधानों की सीमा से बाहर हैं, यद्यपि, कुछ हद तक, ये मित्रताएँ असमान भी बनी रहीं। मध्यवर्गी महिलाएँ, जो आमतौर पर नेत्रियाँ अथवा आयोजक थीं, एक कर्त्तव्य भाव से कहीं अधिक सक्रिय थीं, और असहायपन व कृतज्ञता की स्थिति वाली अभागियाँ थीं। इससे भी अधिक, 'वैयक्तिकता' के एक नए भाव का विकास स्पष्टतया दृश्य था।

24.5.3 पर्यावरण और जीवंतता

जैसा कि एन्जेल्स ने स्पष्ट किया है, भूमि व उत्पादन के साधनों का स्वामित्व ही मानव संबंधों की सभी श्रेणियों को संचालित करता है और यह, इसीलिए, पितृतंत्र का आधार है। उच्च रूप से उन्नत विज्ञान व प्रौद्योगिकी के युग में भी खाद्य व वह सब जो एक इंसान की जरूरत है, प्रकृति व पर्यावरण से ही आता है। हम यह भी जानते हैं कि मानव अस्तित्व के पहले ही दिन से, स्त्रियाँ खाद्य एकत्रक व खाद्य प्रदायक रही हैं; और इसीलिए स्त्रियाँ ही पर्यावरणीय निम्नीकरण व प्रकृति की अंधाधुंध लूट के परिणामस्वरूप सर्वाधिक दुष्प्रभावित हैं। यही कारण है, महिला-आंदोलन उनके व उनके परिवार की आजीविका तथा प्रकृति-संरक्षण के संबंध में सर्वाधिक प्रबल रहा है। यह स्वतंत्रतापूर्व भारत में वन-कानूनों को तोड़ने वाली महिलाओं के साथ शुरू हुआ। इस संबंध में 'चिपको' और 'नर्मदा बचाओ' आंदोलन अच्छे उदाहरण हैं। 'स्व-नियोजित महिला-परिषद् (सेवा–SEWA) भारत व दक्षिण एशिया में प्रथम विख्यात संगठन है, जिसने असंगठित व गृह-आधारित क्षेत्रों में महिला कर्मियों को संगठित किया। जब से यह, महिला कोष' या महिला-सरकारी बैंक से गहनता से जुड़ा है, शायद सर्वाधिक सफल और पोषित महिला-आंदोलन रहा है। उसने बंगलादेश, नेपाल व दक्षिण एशिया में अन्यत्र भी इसी प्रकार के अनेक आंदोलनों को प्रेरणा दी है। दक्षिण अफ्रीका के स्व-नियोजित महिला-संघ ने इस आदर्श का पूरी तरह से अनुकरण किया है और ये दोनों, एक साथ, अंतर्राष्ट्रीय क्षय संगठन (आई.एल.ओ.) पर इस बात के लिए प्रभाव डाल सके हैं कि गृह-आधारित कर्मियों को पहचान व संरक्षण देने वाले अंतर्राष्ट्रीय कानूनों का अधिनियम किया जाए (इन कर्मियों में अधिकांश महिलाएँ किसी अर्थव्यवस्था के सर्वाधिक वंचित वर्गों से हैं)। बंगलादेश का 'ग्रामीण बैंक' महिलाओं की आर्थिक स्वाधीनता हेतु एक जन्म व्यापक रूप से स्वीकृत आदर्श बन चुका है।

बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) कुछ महिला आतंकवादियों की गतिविधियों के विषय में आप क्या जानते हैं? लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के लिए मद्यपान को क्यों एक मुख्य कारण माना जाता है, स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के पीछे आप क्या मूल कारण समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

24.6 राजनीति में महिलाएँ या महिलाओं 'द्वारा' राजनीति

भाग 24.4 में आपने संक्षिप्त में महिलाओं की स्वतंत्र राजनीतिक पहचान अथवा पहलकारी के बारे में पढ़ा है। इस भाग में आप ऐसे दृष्टांतों से अवगत हो सकेंगे जहाँ इस प्रकार की पहलकारियाँ अधिक सुनिर्दिष्ट दिखाई दीं।

24.6.1 तेलंगाना आंदोलन

भूमि व संबंधित पारिस्थितिक-राजनीतिक अधिकारों हेतु तेलंगाना आंदोलन में महिला-भागीदारी महत्त्वपूर्ण थी। यद्यपि इसका नेतृत्व पुरुषों के पास था, यदि महिलाओं से सशक्त व सतत प्रेरणा न मिलती तो यह कब का समाप्त हो गया होता। यह ब्रिटिश राज (1941) के लिए उसके अन्यायों के विरुद्ध शुरू हुआ, और उनकी अपनी सरकार (1952 तक) के तले भी अन्यायों की निरंतरता के विरुद्ध जारी रहा।

24.6.2 बोध गया आंदोलन

भूमि, यानी आजीविका, अथवा महिलाओं "द्वारा" आर्थिक अधिकारों हेतु एक अन्य महत्त्वपूर्ण आंदोलन था – उन कृषक स्त्रियों द्वारा 'पट्टे' का बलात् अधिग्रहण, जो बोधगया (बिहार) में अथवा उसके आसपास से एकत्रित हुई थीं। मद्यपान व अन्य दुर्व्यसनों के कारण पुरुष भूमि में पर्याप्त श्रम व संसाधन नहीं लगा रहे थे। अनापेक्षित सफलता महिलाओं द्वारा सभी संयुक्त प्रयासों के लिए एक उत्कृष्ट प्रेरणा बन गई। लेकिन, यहाँ सफलता अद्भुत और विशिष्ट थी; अन्य अधिकांश मामलों में सफलता उनके भाग्य में नहीं थी, और बिहार सामाजिक अन्याय व महिला-उत्पीड़न में शीर्षस्थ राज्यों में एक अभी तक बना हुआ है।

24.6.3 दलित महिला आंदोलन

यह कहना गलत न होगा कि दलित महिलाएँ सर्वप्रथम महाराष्ट्र में एक स्वयं-शिक्षित दम्पत्ति, फुले, द्वारा संगठित की गईं। इनको (फुले दम्पत्ति) 19वीं सदी में महिला-अधिकारों हेतु आंदोलन के संस्थापकों में से एक भी कहा जा सकता है। वर्तमान में, जनवादी महिला समिति इस आंदोलन की प्रबलतम समर्थक है। दलित महिलाओं ने मुख्यत: दो कारणों से स्वयं को, अपने पुरुषों व अन्य महिलाओं, दोनों से अलग रहकर संगठित करने की आवश्यकता महसूस की : (i) दलित पुरुष, तथापि स्वयं उत्पीड़ित हों, अपनी ही स्त्रियों को उत्पीड़ित हों, अपनी ही स्त्रियों को उत्पीड़ित करने से बाज़ नहीं आते; और (ii) ग़ैर-दलित महिलाएँ, हालाँकि निष्कपट हैं, उस 'दोहरे' दमन को नहीं समझ पाती हैं जो एक दलित महिला स्थिर रूप से झेलती है।

24.6.4 आदिवासी महिला आंदोलन

नागालैण्ड की उत्तरी कछार पहाड़ियों में, गुडियालो, प्यार से जिसे 'रानी' बुलाते हैं, नागरिक अवज्ञा आंदोलन में अपनी भूमिका के लिए प्रसिद्ध हो गई। अपने चचेरे/ ममेरे भाई जादोनांग द्वारा प्रेरणा पाकर जादोनांग मणिपुर में ग्रामवासियों को संघटित करने में सक्रिय था। वह मात्र 13 वर्ष की अल्पायु में ही इसमें शामिल हो गई। जादोनांग मणिपुर में ग्रामवासियों को संघटित करने में सक्रिय था। 1931-32 में, अपने इस भाई, जिसे 'राज' द्वारा फाँसी दे दी गई थी, के नेतृत्व वाले शासन का अधिकार अपने हाथ में लेकर गुडियालो ने एक 'महसूल इनकारी' अभियान शुरू किया। इन ग्रामवासियों ने दुलाई पर अनिवार्य उपग्रहणों का भुगतान रोक दिया और बलात् श्रम के रूप में काम करने से इनकार करना शुरू कर दिया।

यह इस प्रकार के अनेक देशी व स्वैच्छिक जन-आंदोलनों में से एक है जिसको 'मुख्यधारा' राष्ट्रवादी राजनीति द्वारा प्रबल रूप से हतोत्साहित व अस्वीकृत किया जाता था। यह प्रवृत्ति और निर्णय लेने की अभिवृत्ति कि दूसरे या दूसरों के लिए क्या अच्छा है और क्या आवश्यक है, ही पितृतंत्र और पूँजीवाद (और, वास्तव में, साम्राज्यवाद) का आधार है, तथा स्वतंत्रता के बाद आज भी जारी है। यही कारण है कि भारत के आज़ादी हासिल करने के आधे से भी अधिक सदी गुज़रने के बाद भी आदिवासी, दलित व महिलाएँ अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। वर्तमान में, पर्यावरणीय निम्नीकरण के विरुद्ध लड़ाई मुख्यत: आदिवासियों अथवा प्रकृति के पुत्र व पुत्रियों द्वारा लड़ी जाती है, क्योंकि प्रकृति की लूट का अर्थ है उनकी आजीविका व संस्कृति को लूटना। स्वाधीन भारत की मुख्यधारा सरकार को यह अहसास नहीं है कि हमारा देश, एक बार फिर, विश्व बाज़ार शक्तियों द्वारा उपनिवेश बनाया जा रहा है।

24.6.5 साहित्य, रंगमंच व अन्य अभिव्यक्ति-विधाओं के माध्यम से संचलन

उप-भाग 24.3.1 ने स्वतंत्रतापूर्व समाज-सुधार व राजनीतिक आंदोलन काल में साहित्य के माध्यम से अपने खुद के आंदोलन में महिलाओं के योगदान के बारे में एक संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किया। स्वतंत्रता के पश्चात् शुरू के कुछ दशकों में कुछ सन्नाटा छाया रहा। हो सकता है महिलाओं ने यह अनुभव करने में कुछ देर की कि 1947 उनके लिए कोई स्वाधीनता नहीं लाया। तदोपरांत, समानता के लिए महिला-आंदोलन में बढ़ती शक्ति के साथ, महिलाओं द्वारा व महिलाओं पर लेखों, फिल्मों और नाटकों की एक लहर चली है। अरुंधती रॉय जैसी सशक्त लेखिकाएँ 'केवल नारी' क्षेत्र को ध्यान से देख रही हैं और मानववाद अथवा सार्वभौमिक मानवाधिकारों के सिद्धांत पर पुरुषों से कहीं अहसास करा रही हैं कि उनका भला महिलाओं के भले में ही निहित है और कि महिलाओं का भला संपूर्ण मानवता की भलाई में निहित है।

बोध प्रश्न 4

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) किसी दलित महिला के सामने आने वाली बड़ी ही ख़ास समस्या क्या है?

.....

.....

.....

24.7 शब्दावली

आमूल परिवर्तनवादी : रिवाजी अथवा पारम्परिक से एक विचारणीय प्रस्थान द्वारा लक्षणान्वित; उग्र परिवर्तन के विकारों, व्यवहारों व नीतियों से जुड़ा एक राजनीतिक गुट।

औपनिवेशिक : एक उपनिवेश अथवा उसके अभिलक्षणों से संबंधित उपनिवेश किसी साम्राज्यिक शक्ति अथवा साम्राज्यिक मानसिकता द्वारा अधिगृहीत व शासित एक राज्य क्षेत्र एवं राष्ट्र है।

पाश्चात्यकरण : उच्चरूप से औद्योगीकृत देशों, सामान्यतः पश्चिमी गोलार्द्ध में, की परम्पराओं व आधुनिकतम संस्कृति में ढलना अथवा उनको अंगीकार कर लेना।

बहुविवाह प्रथा : एक ही समय में एक से अधिक पत्नियाँ रखने की रूढ़ि।

मताधिकार : वोट देने का अधिकार (राजनीतिक मामलों में अथवा सरकार के निर्माण हेतु)।

मध्यवर्ग : निजी परिसम्पत्ति हितों व उपभोक्तावाद द्वारा प्रभावित सामाजिक व्यवहार एवं राजनीतिक विचारों वाला।

नारी अधिकारवादी विचार : इस धारणा से जन्मे विचार कि महिलाएँ राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक अधिकारों के संबंध में पुरुषों के समान हैं।

लिंग इस समाविष्ट धारणा के साथ पुरुष व स्त्री के बीच सामाजिक रूप से स्थापित मतभेद कि जीवन के हर पहलू में स्त्रियाँ पुरुषों से निकृष्ट हैं।

सुधार : संशोधन उसका जो दोषपूर्ण, पापमय, अनैतिक अथवा भ्रष्ट है; किसी कुप्रथा, अन्याय अथवा त्रुटियों का निराकरण अथवा ठीक करने का कार्य।

24.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें व लेख

कुमार, राधा, *दि हिस्ट्री ऑव डूइंग,* काली फॉर विमिन, नई दिल्ली, 1993।

गेल ओमवेद्त : *कल्चरल रिवोल्ट इन् ए कॅलोनियल सोसाइटी।*

गेल ओमवेद्त : *वी विल स्मैश दिस प्रीज़न।*

लिडिल, जोआना तथा जोशी, रमा (सं०), *डॉक्टर्स ऑव इण्डियेन्डेन्स : जैण्डर, कास्ट एण्ड क्लास,* काली फॉर विमिन, नई दिल्ली, 1986।

संहारी, कुमकुम तथा वैद, सुरेश (सं०), *रीकास्टिंग विमिन : ऐल्सेज़ इन कॅलोनियल हिस्ट्री,* काली फॉर विमिन, नई दिल्ली, 1989।

24.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इसको इस प्रकार इसलिए पुकारा जाता था क्योंकि महिलाओं की स्थिति सुधारने हेतु सामाजिक सुधारों को आरंभ करने के प्रयास इसी काल में किए गए। वे बुराइयाँ जिनका उन्मूलन किए जाने के प्रयास किए जाने थे, में शामिल थे – सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-पुनर्विवाह पर पाबन्दी, पर्दा-प्रथा, इत्यादि।

2) पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और पंडित मृत्युञ्जय ने सिद्ध कर दिया कि शास्त्र विधवा-पुनर्विवाह की स्वीकृति देते हैं; विधवा-पुनर्विवाह संस्थाएँ बनाई गईं और विधवा-पुनर्विवाह नियम बनाए गए।

3) उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की जिसने जाति-प्रथा, बहुविवाह-परम्परा, बाल-विवाह, तथा संस्कृत व अंग्रेजी की अनिवार्य शिक्षा हेतु संघर्ष करने का प्रयास किया।

बोध प्रश्न 2

1) ये घटनाएँ : 1907 में मैडम कामा ने स्टुट्गार्ट में सोशलिस्ट इण्टर-नेशनल की कांग्रेस में "वन्दे मातरम्" ध्वज फहराया; 1913 में कुमुदिनी मित्रा को बुडापेस्ट में अंतर्राष्ट्रीय नारी-मताधिकार सम्मेलन में आमंत्रित किया गया; सरोजिनी नायडू, सरला देवी तथा हरदेवी रोशनलाल भी महिलाओं के मुद्दों को उठाने वाली प्रथम महिलाओं में थीं।

2) आर्य समाज के सदस्य के नाते उन्होंने लगभग पूरे पंजाब का भ्रमण किया और महिलाओं से निवेदन किया कि वे अपने पुत्रों को सरकारी नौकरियों में जाने के लिए न प्रेरित करें बल्कि "स्वदेशी" बनने के लिए करें।

3) उनके मतानुसार "स्वराज" व "स्वाधीनता" का क्रमश: अर्थ है– स्व-शासन, तथा "स्वयं पर शासन करने की शक्ति व सत्ता"।

बोध प्रश्न 3

1) ब्रिटिश अधिकारियों को मारकर तथा औपनिवेशिक व्यवस्था के विरुद्ध छात्रों, अध्यापकों व जनता का आह्वान कर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया।

2) मद्यपान पूरे परिवार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। देश के अनेक भागों, खासकर, आंध्रप्रदेश व उत्तरांचल, में ताड़ी-विरुद्ध आंदोलनों को शुरू कर महिलाओं ने इसके विरुद्ध क्रांति की।

3) महिलाओं के विरुद्ध हिंसा बलात्कार, दहेज-मृत्यु, घरेलू हिंसा, इत्यादि के रूप में व्यक्त हुई। इसके लिए मुख्य कारण उनकी नाजुक सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक प्रतिबंधों, तथा लोगों के मूल्यों में निहित हैं।

बोध प्रश्न 4

1) दलित महिलाएँ भेदभाव की दोहरी समस्याएँ झेलती हैं : वे उन सामान्य समस्याओं का सामना करती हैं जो सभी जातियों से सम्बंध रखने वाली महिलाएँ झेलती हैं, और वे समस्याएँ भी जो दलित महिलाओं द्वारा उनकी जाति की सामाजिक स्थिति के कारण झेली जाती हैं।